तिनका तिनका आग और दलित चेतना

डॉ. बी.आर. गायकवाड
हिंदी विभागाध्यक्ष, महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा जि. लातूर

सार: डॉ. जयप्रकाश कर्दम का दूसरा काव्य संग्रह है 'तिनका तिनका आग' । दलित चेतना की दृष्टि यह काव्य संग्रह हिंदी दलित कविता की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस संग्रह में भी कवि की दृष्टि लोकरंजन के बजाय लोकमंगल की ओर अधिक रही है इसीलिए यहाँ पर कवि ने संप्रेषणीयता को अधिक महत्त्व दिया है। दलित समाज में स्थित विसंगतियों को उन्होंने बड़ी मार्मिकता से प्रभावपूर्ण रूप से उभारा है। दलित चेतना के विविध पक्षों को उन्होंने इस काव्य में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। जिस दलित चेतना के परिवेश में उन्होंने अपना जीवन व्यतीत किया, उसी परिवेश में उनकी कविता फलती-फूलती है। नव परिवर्तन का संदेश देती उनकी ये कविताएँ दलित जीवन संघर्ष को प्रभावी ढंग से व्यक्त करती हैं। सन् २००४ ई. में प्रकाशित यह काव्य संग्रह दलित आन्दोलन को भी एक नई दिशा देता है। नवपरिवर्तन का संदेश देती ये कविताएँ मनुष्य को मनुष्य के रूप में ही स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

परिचय

मानवता विरोधी सामाजिक मूल्यों तथा मान्यताओं को इस संग्रह की कविताएँ विस्थापित करने का प्रयास करती हैं। सवर्ण समाज किस तरह से जातिव्यवस्था और सामंतवादी व्यवस्था को टिकाए रखने का प्रयास करता है इसका उदाहरण ये कविताएँ है। इस संदर्भ में भी शीलबोधि का यह कथन वास्तविकताओं पर प्रकाश डालता है, 'कवि कहता है कि यह वह सबसे मज़बूत कारण है जिसके चलते-चलते भारत में गरीबी की मार सहते दो व्यक्ति अपने शोषण के लिए संयुक्त प्रयास नहीं कर सकते। जाति भारतीयों के दिमाग में मालिक व गुलाम की तरह व्यवहारित होती है। आज भी हमारी समाजव्यवस्था ठाकुरों और ब्राह्मणों द्वारा ही संचालित होती है। दलित समाज के उत्पीड़न और शोषण पर प्रकाश डालती डॉ. कर्दम की इस संग्रह की कविताएँ पाठकों के साथ सीधा रिश्ता स्थापित करती है। 'अतं दीपं भवं' का संदेश देती ये कविताएँ दलित चेतना के स्वर को ही मुखरित करती हैं। इसीलिए इन कविताओं का अपना अधिक महत्त्व है। 'अत्तं दीपं भव' की चेतना से युक्त कविताएँ हैं। डॉ. कर्दम की कविताओं पर जितना डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव है महात्मा गौतम बुद्ध के दर्शन और चिंतन का है। यही कारण है कि उनकी उतनी ही कविताओं की वैचारिक सीमा अधिक विस्तृत और उदात्त हैं। 'अतं दीपं भवं' कविता में सारे दलित समाज को बंधनों से मुक्त होकर उदात्त भाव से जीने की प्रेरणा यह कवि देता है। कवि का विश्वास है कि 'अतं दीपं भवं' का संदेश दलितों के जीवन का सही मार्ग बताता है। साथ ही यह संदेश व्यक्ति को अपने भीतर झाँकने की प्रेरणा भी देता है। डॉ. शिवाजी दळवी के मता नुसार, 'कवि की यह वाणी चिंतन के यथार्थ को समझती है। ब्राह्मण संस्कृति अकर्मण्य की संस्कृति है, जो अंधःकार से निकल ने को भी दूसरों से ही प्रार्थना करती है और बौद्ध संस्कृति श्रम संस्कृति है। इसीलिए वह अपना दीपक आप बनने की बात कहती है। एक में याचना है तो दूसरे में आत्मविश्वास। इसी आत्मविश्वास को डॉ. कर्दम ने अभिव्यक्ति दी है।'

यह उद्धरण दृष्टव्य है- 'मुझे लोहे की छड़ और पृथ्वी पर खड़े होने की जगह दो में पृथ्वी को हिला दूंगा।' यहाँ यह भी ध्यान में रखना ज़रूरी है कि वर्णवादी व्यवस्था में सवर्णों ने ही दलितों को शिक्षा से वंचित रखा और खुद हर तरह की शिक्षा दीक्षा प्राप्त करते रहा है। परिणामस्वरूप यह वर्ण बुद्धिवादी रहा है। ये लोग युद्ध रणांगण में नहीं आते बल्कि बौद्धिक बल से लड़ते हैं क्योंकि अन्ततः विजय बौद्धिकता से प्राप्त होती है। दलितों में भी युद्ध जीतने के लिए बौद्धिक विकास करना होगा आरै अपने उद्देश्य ऊँचा रखना होगा तथा सत्ता उसके हाथ में आयेगी। अभी तो स्तर पर दलित समाज का शोषण ही हो रहा है। इसीलिए शोषित समाज को आह्वान करते हुए कवि कहता है 'याद रखो यह भी छोटे लक्ष्य के साथ किसी ऊँचाइ तक, नहीं पहुँया जा सकता आगे बढ़ना है यदि अपने लक्ष्य को बड़ा बनाओ 'तमसो मां जोतिर्गमय' की याचना छोड़ 'अतं दीपं भवं' को अपनाओ।' इस तरह कवि दलित समाज नव-उत्साह का निर्माण करना चाहता है कि दलित समाज स्वच्छंद और जीवन जीते हुए सारे मानवाधिकार का उपयोग करें। इस कविता में कवि दलित वर्ग से कहता है कि अपना दीप स्वयं बनकर यातना और उत्पीड़न से मुक्त होकर जीवन बिताए। महात्मा बुद्ध और डॉ. अम्बेड़कर का यह संदेश है। इसी संदेश को ध्यान में रखकर दलित समाज को आगे बढ़ना है। दलितों के मुक्ति के मार्ग में अब कोई भी बाधा उपस्थित करने का साहस नहीं करेगा। यंत्रणाओं की आग में तपकर ही दलित अपने भविष्य का स्वयं ही निर्माण कर रहा है। कवि को इस बात का अहसास है कि सवर्णों की प्रगति में उसका ही परिश्रम है आरे सवर्णों की तिजोरी भी मेरे परिश्रम से भरी। इसी बात को आगे बढ़ाते हुए कवि स्पष्ट कहता है

'ठाकुर के खेत से मेरा ही लहू बहता है वही सबसे सस्ता है की तिजोरी तक सूरज की गर्मी से नहीं झुलसता मेरा शरीर उसे झूलसता है, यंत्रणाओं का सूरज ।' यदि इन यंत्रणाओं से दलित वर्ग मुक्त होना चाहता है तो 'अतं दीपं भवं' बनना होगा। कवि कहता है कि इस देश में दलित व्यक्ति को चाहिए कि एक सर्व सामान्य व्यक्ति की तरह स्वतंत्र रूप से अपना जीवन व्यतीत करें। कोई भय या कोई चिंता नहीं। इस तरह हम जीवन व्यतीत करते रहेंगे तभी इस देश में समानता स्थापित हो सकेगी। इसी बात को कविने 'मेरी चाह' नामक कविता में कहा है "असमानता और अन्याय की गालियों में मैं समता के राजपथ पर चलना चाहता हूँ।'

आज के इस वैज्ञानिक युग में भी दलित समाज को कभी ईश्वर और कभी पापपुण्य का नाम लेकर डराया जाता है, धमकाया जाता है ताकि वह सदा सवर्णों का दास बने रहे आरे उनकी सेवा में अपना जीवन बिताए तथा यही उच्चवर्ग की इच्छा और स्वार्थ रहा है। दलितों को भाग्य और धर्म के नाम पर सदा ही लूटा जाता रहा है। महात्मा फुले और डॉ. अम्बेड़कर के जनजागृति आन्दोलन के कारण दलित सजग हो गया है। अपने अधिकार को जान गया है। इसीलिए अब वह एक आम आदमी की तरह जीना चाहता है। पढ़-लिखकर अपना जीवन परिवर्तित करना चाहता है। इतना सब करने के बाद भी जातीयता का कलंक मिटने का नाम नहीं लेता। बड़े से बड़ा ओहदा प्राप्त करने के बाद भी उसकी जात से ही उसे पहचाना जाता है। इसी दुःख को व्यक्त करते हुए कवि कहता है

'प्रेम की कविता का बेतुका छंद मनुष्यता की कमीज़ पर जाति का पैबंद ।' वर्तमान युग में जातीयता का कलंक पीछा छूटता न देखकर कवि को बड़ी पीड़ा होती है। पूरा देश आज प्रगति की और बढ़ रहा है। हम हर रोज समानता की प्रतिज्ञा का पाठ करते, सब एक समाज होने का नारा लगाते हैं। फिर भी समाज में जितना परिवर्तन होना चाहिए उतना नहीं हुआ। आज भी गांवों और शहरों में दलित समाज पर अन्याय तथा अत्याचार होते हैं। ज़मींदार और सामंत दलितों को आज भी पीड़ित करते हैं। कहीं रणवीर सेना उनके परिवार को बर्बाद कर देती है तो कही साहूकारी पाश हर तरह से उस पर अन्याय करता है फिर हम कहत है कि 'मेरा भारत महान!'। ऐसे भारत से कवि को घृणा है। इसीलिए यह स्पष्ट कह ता है कि 'मैं' नहीं हूँ भारत। डॉ. कर्दम 'भारत' नामक अपनी कविता में आज के हालात को देखकर स्पष्ट कहते हैं- 'नहीं बनना चाहता में भारत यदि न्याय और असमानता के ढ़ोंग का नाम है भारत, नहीं बनना चाहता में भारत।' हमारे देश में हर आदमी लगातार धर्मनिरपेक्षता और समानता की बातें करता है लेकिन हमारे बीच में न तो जातिगत समानता है और समाजव्यवस्थागत। जातियता का नाटक जो हमारे यहाँ देश में चलता है। जब तक इस देश में इस तरह के ढोंग चलते रहेंगे तब तक दलित और किसानों पर इस तरह के अत्याचार होते रहेंग। और हमारे देश में नाटकीयता बहुत है। खानेके दाँत अलग हैं तो दिखाने के अलग।

सामाजिक सरोकार की कविता :

यहाँ खाने वैसे तो जयप्रकाश कर्दम शुरु से आखिर तक सामाजिक दायित्त्व निभानेवाले कवि है। उनका दूसरा संग्रह 'तिनका तिनका आग' की कविताएँ बड़ी शिद्दत से उनके सामाजिक सरोकार को प्रतिबिम्बित करती है। जिस तरह 'गूंगा नही था मैं' की कविता दलित वर्ग के जीवन यथार्थ को व्यक्त करती है उसी तरह 'तिनका तिनका आग' की कविता सामाजिक परिवर्तन और क्रांतिकारी संदेश देती है। संग्रह की शीर्षक कविता 'तिनका तिनका आग' सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें कवि ने दलित साहित्य के उद्देश्य को ही रेखांकित किया है। हिंदु धर्म जिस तरह के चक्र में फँसकर रह न जाय, यह भय कवि को है। यह भय अकारण नहीं हैं। आज दलित राजनीति में एक ऐसा वर्ग है जो वोटों की राजनीति कर अपने स्वार्थ की फसल को हरी भरी रखना चाहता है। इसीलिए यह कवि स्पष्ट कहता है

'देवता नहीं हैं अम्बेड़कर, पूजा घर में बंद कर दिया जाय, न प्रतिमा है अम्बेड़कर, जिसे तोड़कर ध्वस्त कर दिया जाय।' इसी आशंका के कारण देवेशकुमार चौधरी कहते हैं- 'जिस तरह बौद्ध धर्म में महायान संप्रदाय ने तथागत गौतम बुद्ध को भगवान बनाकर बौध्द धर्म में अवतारवाद और चमत्कार भरकर उसके मूल सिद्धान्तों से तिरोहित कर दिया था, ठीक उसी तरह अम्बेड़कर के अनुयायियों ने बाबासाहब को बुत-परस्ती के मूल वर्ग से विचलित किया है, अपनी वोटों की फसल हरी-भरी रखने के लिए दलित राज़नेताओं ने दलित बुद्धिजीवियों का भरपूर उपयोग किया है।' इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कैसे डॉ. अम्बेड़कर को भी कुछ लोग निजी स्वार्थ के कारण प्रतिमा बनाकर कैद कर देना चाहत है। पर जो व्यक्ति अपना सारा जीवन अपने समाज के हित के लिए समर्पित करता है और सामाजिक सरोकार ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, ऐसे महान विचारक को किसी विशिष्ट दायरे में बाँधकर रखना उसपर अन्याय करना है। डॉ. अम्बेड़कर ने तो सारा जीवन कालबाह्य दायरों को तोड़ने में ही बिताया है। विद्रोह ही जिनका मूल स्वभाव था भला उसे कौन सीमा में बांधकर रख सकता

है? दलित समाज के हितों के लिए ही जिसने जीवन भर संघर्ष किया उससे बड़ा सामाजिक सरोकार और किसका हो सकता है?

'तिनका तिनका आग' की कविताएँ स्पष्ट संकेत करती हैं कि 'अभी भी कविता में मनुष्य की संवेदना के रंग भरे जा सकते हैं, इस दौर में जब अधिकाश कविताएँ नारेबाजी का शिकार हो गई है।' डॉ. कर्दम की कविताएँ सामाजिक सरोकार से जुड़ी हुई हैं। यही 'तिनका तिनका आग' की कविताओं का एकमात्र लक्ष्य है। इसमें सन्देह नहीं कि डॉ. कर्दम की ये कविताएँ बिना किसी लाग-लपेट के अपने समय की सच्चाइयों से संघर्ष कर रही है। सामाजिक सरोकार की इस तरह की प्रचीति बहुत कम रचनाओं में देखने को मिलती है। सामाजिक सरोकार से जुड़ी इस कवि की कविताएँ न तो केवल मनोरंजन की वस्तु हैं और न समय काटने का साधन । कविता कवि के लिए कमाने का साधन भी नहीं हैं। यह उसका उद्देश्य नहीं है। चमत्कार प्रदर्शन कविता इस कवि के लिए दलित जीवन के यथार्थ व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। वे ये भी मानते हैं कि कविता उनके लिए सज़ा-सँवारकर पेश करने की वस्तु नहीं है वह तो जीवन के यथार्थ और कटु जीवन अनुभूतियों से जुड़ी हुई है। कर्दम के लिए कवि ता समाजपरिवर्तन लाने का साधन है और इसीलिए वे कविता का प्रयोग एक हथियार की तरह करते हैं। उनकी कविता सामाजिक प्रतिबद्धता की कविता है। प्रगतिशील चेतना से युक्त कर्दम की कविताएँ सदा ही आत्ममंथन कर सामाजिक सरोकार का ध्यान रखती हैं। दलित समाज के प्रति सामाजिक सरोकार से ओतप्रोत ये कविताएँ मानवतावादी संकल्प को दोहराती हैं। दलित समाज को उत्पीड़न से मुक्ति का मार्ग बताती ये कविताएँ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ रही हैं।

इस देश को आज़ादी मिले पचाहत्तर वर्ष हो रहे है फिर इस लोकतंत्र में न तो हम जातिभेद मिटा सके और न दलितों पर होनेवाले अत्याचार खत्म कर सके। आज भारतीय चिंतन की ट्रेन जाति के स्टेशन से दूर से निकल जाती है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि 'मै बनारस जाऊंगा' कविता में कहता है 'वहाँ ब्राह्मणवाद का गढ़ है, एक से बढ़कर एक सनातनी कट्टर और क्रूर लोग मिलेंगे जातिभेद और छूआ-छूत में डूबे हुए पानी को धो-धोकर पीने वाले।' ढोंग, पाखण्ड और प्रदर्शन का विरोध करती कर्दम की कविता समाज के यथार्थ को ही प्रभावपूर्ण रूप में व्यक्त करती है। इससे यही सिद्ध होता है कि ये कविताएँ सामाजिक सरोकार की कविता हैं। डॉ. कर्दम की इन कविताओं का मूल स्वर यातनाओं से मुक्त होकर फिर से जीवन के गीत गाने का है। दलित पूरी तरह आज़ाद होकर अपने अधिकारों का उपभोग कर सके। ऐसे स्थिति में भी दलित वर्ग जीवन • की वास्तविकता को नहीं भूलता। इसीलिए कवि संवेदनाओं को व्यक्त करते हुए कहता है ' ठाकुर के खेत से सेठ की तिजोरी तक मेरा ही लहू बहता है, वही सबसे सस्ता है।' शोषण, अनाचार तथा अत्याचार जब तक होता रहेगा तब तक न तो देश धर्मनिरपेक्ष होगा और न समानता की स्थापना होगी। यदि जातिगत भेदभावों को मिटाना है, समाज में समानता स्थापित करनी है, दलित समाज की प्रगति करनी है तो यह कवि के मतानुसार, तभी संभव है जब हम सारे जातिभदे फैलानेवाले ग्रंथों को आग लगा दें। वास्तव में यह कवि दलित जीवन के कटु सत्य अनभुवों से गुजरा है जहाँ उसे अपमान के घंटू पीने पड़े है। इसी कारण उन्होनें दलित समाज के वास्तव का मार्मिक रेखांकन इन कविताओं में किया है। ये कविताएँ दलित जीवन के यथार्थ का जीवन्त आलेख है।

जातियता की समस्या का चित्रण:

डॉ. कर्दम ने 'तिनका तिनका आग' संग्रह की कविताओं में अनेक स्थलों पर जातियता की समस्या का मार्मिक चित्रण किया है चूँकि यह जातियता प्राचीन भारतीय समाजव्यवस्था का ही परिणाम है। प्राचीन काल से इस देश में समाजव्यवस्था में जातिभेद का अधिक प्रभाव है। वर्तमान काल से इस देश में समाजव्यवस्था में जाति विशेष को बड़ा महत्त्व प्राप्त है। विशेष रूप से देश ग्रामीण भाग में जातिभेद का अधिक प्रभाव है। वर्तमान काल में भी ग्रामीण भागों में वर्णव्यवस्था का ही बोल बाला है। स्वाधीनता के बाद डॉ. अम्बेड़कर के मानवतावादी और समानतावादी विचारों के कारण जातीय समाजव्यवस्था पर काफी प्रभाव पड़ा है। यद्यपि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सभी भारतीयों ने मिलकर विदेशी सत्ता का विरोध किया था। पर स्वाधीनता के बाद इस जातीय एकता में फिर से दरारें पड़ने लगी। धीरे-धीरे ये दरारें और अधिक बढ़ती ही गई। इस संदर्भ में डॉ. देवेश ठाकुर ने जो बात कही वह उल्लेखनीय है। वे कहत हैं, 'एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था तो दूसरी ओर स्वयं उसमें नगर ही ग्राम्य और आँचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विषबीज विकसित हो रहा था। जिससे व्यक्ति-व्यक्ति के बीच की खाई गहरी हो रही थी आरै व्यक्ति समाज जातिगत आधार पर अलग-अलग समूह में विभाजित और विच्छिन्न होकरपरस्पर द्वेष, ईर्षा और शत्रुता के भाव को बढ़ाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था। इससे स्पष्ट होता है कि समाज जातियता के कारण ही विभाजित हुआ है।'

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि जातियता के बीज गाँवों के स्तर पर भी विकसित हो रहे थे। हर जाति अपने को अन्यों से श्रेष्ठ समझ रही थी। हर व्यक्ति अपने स्तर पर अपनी जाति के प्रति निष्ठावान बने रहन का प्रयास करता है। समाज के विरुद्ध जाने पर जात पंचायत उसे बहिष्कृत कर देती थी। इस तरह जातिव्यवस्था को मिटाने का प्रयास सबसे पहले महात्मा फुले, राजर्षि शाहू महाराज, डॉ. अम्बेड़कर जैसे महान विद्वान और समाज सुधारकों ने किया। डॉ. कर्दम भी इन्हीं महान नेताओं के बताए मार्ग का अनुसरण कर रहे है। फिर भी आज भी हमारे समाज में दलित व्यक्ति सवर्णों के सामने बैठ नहीं सकता और नही उनसे मुँह उठाकर बात का कोई स्थान ही नहीं है। इस संग्रह की 'भारत' नामक कविता में जातियता के चित्रण करते हुए कवि स्पष्ट कहता है-'अपनी सत्ता और साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिए मिटाएँ वे मुझे ही जिंदा रखेंगे वे वर्ण और जाति वर्णभेद और सामुदायिकता।'

इस तरह यह कवि कहना चाहता है कि सवर्ण लोग सदा ही अपनी संकुचित प्रवृत्ति के कारण समाज में जातिभेद को प्रश्रय देकर बढ़ाते ही रहेंगे। ये लोग अपने स्वार्थ के लिए वर्णभेद और सांप्रदायिकता का भी सहारा लेंगे ताकि समाज जातिव्यवस्था और वर्णव्यवस्था के बीच फँसा रहे। अपनी दूकानदारी चलाने के लिए ही ऐसे सदा प्रयास करते रहते हैं। कवि आगे स्पष्ट कहता है

'मुझे कहा गया सवर्ण ताकि मैं तुम्हारा वर्ण सुचिता का सम्मान करता रहूँ घोषित किया गया अस्पृश्य ताकि मैं तुम्हारे साथ घुल-मिल ना सकूँ पुकारा गया मुझे हरिजन ताकि सदैव हीनता से दबा कवि यहाँ स्पष्ट करना चाहता है कि जातिभेद की व्यवस्था के कारण उसे अस्पृश्य घोषित कर दीन-हीन बना दिया गया है। जब कभी जातिभेद का प्रश्न आता तब लोकतंत्र की यह रेलगाडी इक्कीसवीं सदी में आती, जाति के स्टेशन को छोड़कर निकल जाती है। इसी बात का संकेत करते हुए यह कवि 'भारतीय चिंतन की गाड़ी' नामक कविता में कहता है

'लोकतंत्र की धुरी पर चलनेवाली भारतीय चिंतन की यह गाड़ी इक्कीसवीं सदी में भी, जाति के स्टेशन से बचकर निकलती है।' देश को आज़ादी पच्चाहत्तर वर्ष बीत रहे है। लोकतांत्रिक प्रणाली लेकर चलनेवाला हमारा देश है। फिर भी यह हमारा दुर्भाग्य है कि हम जातीयता के संकीर्ण जाल से मुक्त नहीं हो सके। उच्च और नीच को नापने का साधन आज हमारा जातीयता ही। हम कही भी जाए सर्वत्र जातीयता को ही महत्त्व दिया जाता है। ब्राह्मणवाद का असर हमारी संपूर्ण समाज व्यवस्था पर इस तरह छाया हुआ है कि इस बुद्धिवादी और वैज्ञानिक युग में भी हमें उससे मुक्ति नहीं मिली है। सदियों से चली आती हुई, धर्माधिष्ठित इस समाज व्यवस्था ने दलित समाज को इस तरह शोषित और पीड़ित किया कि आज भी इस समाज की उस पीड़ा से मुक्ति नहीं मिली। जातिभेद की • व्यवस्था को माननेवाला हर व्यक्ति दलित समाज को हीन दृष्टि से देखता है। वर्तमान युग में भी सनातनी समुदाय के लोग दलितों के स्पर्श मात्र से मानते हैं कि ये अपवित्र हो गए। ऐसा अंधविश्वास और अंधश्रद्धा जिस समाज में होगी वह समाज क्या प्रगति करेगा। अतः हम चाहिए कि पूरी बल-शक्ति का प्रयोग कर जातिगत व्यवस्था का पूरी तरह से विनाश कर दलितों को उनका अधिकार दें। तभी सही अर्थों में मानव मुक्ति होगी।

शोषण की समस्या का चित्रण :

दलित समाज का शोषण कोई नया विषय नहीं है। प्राचीन काल से भारतीय समाज व्यवस्था में दलित जातियों के लोगों को हर तरह से पीड़ित किया गया है। ब्राह्मण और ठाकुर समाज के लोगों ने तो अकल्पनीय अनाचार अत्याचार दलित समाज पर किए हैं। कई उदाहरण हम ऐसे मिलते हैं कि हम इस तरह के अमानवीय शोषण की कल्पना भी नहीं कर सकते। सवर्ण जाति के लोग दलितों से सेवा कराते रहे, बेगारी में उनसे हर तरह का काम करवाते रहे। यहाँ तक कि जिन दलितों के पास अपने पुरखों की थोड़ी-बहुत जमीन थी, वह जमीन भी उन्हें धोका देकर खुद के नाम से करवाते रहे। इस संग्रह की 'अदालत' नामक कविता में जयप्रकाश कर्दम स्पष्ट कहते हैं । 'लगवाकर अँगूठा कोरे कागज पर हडपते आए हो तुम मेरे घर जमीन लूटते आए हो मेरे गाय-भैंस तक।' यह वास्तविकता है कि दलित समाज को जान-बूझकर अशिक्षित रखा है।

'शूद्र' कहकर उन्हें शिक्षा से वंचित किया गया और इसी आधार पर उनसे कोरे कागज पर अंगूठा के चिह्न लगाकर कभी उनका घर, तो कभी जमीन, तो कभी जानवर आदि लूट लिए गए। सारी सुख-सुविधाओं से दलितों वंचित कर, सवर्ण मनचाहे ढंग से दलितों पर अन्याय करते रहे। अज्ञानी होने के कारण दलितों ने ठाकुर ब्राह्मणों पर सदा ही विश्वास जताया। पर उन्होंने गरीब दलित समाज की नित्य उपेक्षा ही की। दलित सदा सवर्णों के कहने पर ही चलते रहा। परिणामतः, उसके पास जो भी वह सवर्णों ने लूट लिया। अशिक्षा के घोर अंधःकार में दलित पड़े हुए थे। उनके इसी अज्ञान का लाभ उठाकर सवर्णों ने उन्हें बेघर कर दिया।

वर्णव्यवस्था पर आधारित भारतीय समाजव्यवस्था ने सदा ही उच्च वर्ग के हितों की रक्षा की है जिसमें हर व्यक्ति अपने लाभ के लिए निम्नवर्ग का शोषण करता है। इसीलिए श्रीराम गुंदेकर ने एक स्थान पर कहा है, 'दैववादी होनेवाले 'मुझे' का बीज यहाँ की विषमता पर आधारित समाजव्यवस्था में मुनाफ़ाखोर

उत्पादन व्यवस्था में, भ्रष्टाचारी शासन तथा प्रशासकीय व्यवस्था में दिखाई देता है। इस मत से स्पष्ट होता है कि जहाँ समाज में विषमता तथा भेदभाव है वही शोषण होता है।

इसी तरह अपने मत को व्यक्त करते हुए इस संदर्भ में डॉ. बनसोडे ने कहा है, 'भारतीय समाजव्यवस्था में वर्णव्यवस्था एवं वर्ग व्यवस्था के कारण दलितों का शोषण हो रहा है। इस समाजव्यवस्था में सवर्ण समाज बल तथा छल से दलित वर्ग का शोषण करता है। नए नए हतखडें आजमाकर दलितों का शोषण सवर्ण लोग कर रहें है। राजनीति का सहारा लेकर तथा पुलिस को अपना पक्षधर बनाकर उच्चवर्ग दलित वर्ग पर अत्याचार करता है। जिसका सर्वत्र निषेध होना चाहिए। यह निषेध हर स्तर पर, हर जगह होना ही चाहिए। दलितों की गरीबी और अशिक्षा का लाभ उठाकर सवर्ण उनका अमानवीय शोषण कर रहे हैं। ज़मीदार, सरकारी अफ सर, धार्मिर्क नेता, महाजन, साहुकार ये सारे के सारे अपने स्वार्थ एवं हित के लिए दलितों पर अन्याय करते हैं । इन सब के मूल में घृणा भाव आरै दलितों के प्रति द्वेषभाव है। उन्हें पशु पक्षी से भी गया-बिता समझा गया है। इस सन्दर्भ में डॉ. प्रभा बेनीपुरी का यह कथन दृष्टव्य है । जहाँ वे कहते हैं, 'जब तक मनष्यु मात्र के प्रति मनुष्य के हृदय में प्रेम का है भाव आविर्भूत न हो मनुष्यता कसे टिकेगी? कहीं व्यक्ति, कहीं समाज आरे कहीं राष्ट्र एक दूसरे का शोषण ही करेंगे।'

प्रभा बेनीपुरी के इस कथन से स्पष्ट होता है कि मानव-मानव जब तक एक दूसरे के समाज में एक-दूसरे का शोषण होता ही रहेगा। निकट नहीं आयेंगे, प्रेमभाव नही रखेंगे तब तक दलित समाज का शोषण हमारे देश में एक आम बात है। यद्यपि महात्मा फुले और डॉ. अम्बेडकर जी ने इस शोषण के विरुद्ध आवाज उठाकर दलित समाज को सुशिक्षित और संगठित होकर संघर्ष करने का संदेश दिया और दलित समाज में सामाजिक क्रांति के बीज बोए, तब शोषण की प्रक्रिया में अंतर पड़ा है। किंतु वर्तमान युग में आज भी गावों में दलित समाज का शोषण किया जाता है। यह शोषण सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर अधिक किया जाता हैं। इसी शोषण के विरोध में डॉ. कर्दम इस संग्रह की अनेक कविताएँ लिखी है। कई स्थलों पर इन कविताओं में जातिभेदी सामाजिक व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया गया है। कवि शिकायत करते है कि आज भी कई स्थलों पर दलितों की रोटी छीनने का प्रयास सवर्णो द्वारा किया जाता है। दलित समाजपर सामुदायिक रूप से अत्याचार कर उन्हें जबरन् बेगारी पर लगाया जाता है। 'अस्मिता' नामक संग्रह की कविता में कवि ने इस समस्या का चित्रण करते हुए स्थितियों को उजागर किया है 'मानव अधिकारों के पक्षधर चिंतित है मानव अधिकारों की रक्षा के लिए सजग और सक्रिय है वे मानव अधिकारों के उल्लंघन के खिलाफ हला लगती है उन्हें, मानव अधिकार की। '

सामान्यतः आज भी अत्याचार तथा अनाचार दलितों पर सरे आम किया जाता है। उन्हें अन्याय की भट्टी में धकेल दिया जाता है। हर स्तर इनके साथ घृणास्पद व्यवहार किया जाता है। मानो न तो कोई उनकी अस्मिता है और अस्तित्त्व । परिणामतः, दलित समाज इस युग में भी पीड़ित और शोषित ही हैं। सवर्णों की इस घृणास्पद वृत्ति

का विरोध करते हुए यह कवि स्पष्ट कहता है 'अन्याय और उत्पीड़न की इस भट्टी में तुमने हमें क्यों झोंका घृणा और घूटन की ठस जिंदगी को लेकर ।'

इस तरह कवि डॉ. कर्दम रेखांकित करते है कि दलितों पर शोषण, अनाचार, अत्याचार, करने की यह सवणों की मानसिकता ही हो चुकी है। हर बार दलितों पर हिंसा का कोई-ना-कोई बहाना ढूँढ लिया जाता है। यही सवर्णों की नीति हो गई है। दलितों को सवर्ण मात्र अपने पैरों की जूती बनाकर ही रखना चाहते। इस समाज के साथ ही सवणों ने अमानवीय व्यवहार किया है। जिसका निषेध कवि करता है।

दलित नारी जीवन की समस्याओं का निरूपण :

दलित नारी की दयनीय स्थिति का चित्रण डॉ. कर्दम ने इस संग्रह की अनेक कविताओं में किया है। एक समय था जब भारतीय समाज में नारी का स्थान सम्माननीय था। उसके प्रति पूर्ण आदर की भावना थी डॉ. बनसोडे मानते हैं, 'भारतीय समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में नारी और पुरुष दोनों को समाज में समान स्थान था।' इसी डॉ. दुर्गेशनंदिनी ने इस सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए एक स्थान पर कहा है, 'समाज में नारी और पुरुष का अस्तित्त्व समान है। सच पूछा जाय तो सृष्टि के मूल में नारी का ही अस्तित्त्व है किंतु उन दोनों को समान मानने में ही सृष्टि की वास्तविकता है।' डॉ. दुर्गेशनंदिनी का यह कथन नारी के गौरव को उल्लेखित करता है। यह वस्तुस्थिति भी रही है। पर कालांतर में स्थितियाँ बदलती गई और पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण धीरे-धीरे समाज में नारी का महत्त्व कम होने लगा जिसके और भी कई कारण रहे है। इस संदर्भ में डॉ. बनसोडे का मत उल्लेखनीय है जहाँ वे कहते हैं, 'आदिकाल में भारत में विदेशी आक्रमणों की संख्या बढ़ गई। विदेशी आक्रमणकर्ता नारियों को उठकर ले जाते थे। इनसे बचने के लिए समाज में परदा प्रथा, बालविवाह,

सति प्रथा आदि कुप्रथाओं ने जन्म लिया।' आगे चलकर इन्हीं प्रथाओं और विदेशी आक्रमणों के कारण समाज में नारी को दुय्यम स्थान प्राप्त हुआ और यहीं नारी पर अनेक प्रकार के निर्बंध लादे गएँ। तब से नारी का समाज में अधिकतर शोषण ही होता गया है। नारी को केवल उपभोग या वासना तृप्ति का साधन ही माना गया हैं। यहाँ तक कि उसे चार दिवारों में बंद रखा जाने लगा। उसका सामाजिक तथा आर्थिक शोषण भी हुआ। उसके साथ गुलामों जैसा व्यवहार किया जाने लगा और आज भी वह लगातार जारी है। दलित नारी की स्थिति तो और भी अधिक दयनीय हो गई। वह दलितों में भी दलित है। सुप्रसिद्ध मराठी दलित लेखक दया पवार और शरणकुमार लिंबाळे भी इस मत से सहमत हैं और आज तो हर स्तर पर नारी का मानसिक और शारीरिक शोषण हो रहा है। इसी का चित्रण करते हुए यह कवि कहता है 'वह भी देवी है किंतु दीन वह भी जननी है किंतु दीन वह भी पूजनीय है किंतु उपेक्षित वह भी शक्ति है किंतु अधिन स्त्री होकर भी नहीं बन पाती वह हिस्सा उस समाज का । नारी का दुर्भाग्य यह है कि समाज में उसकी

भागीदारी नाम मात्र की है। समाज का हिस्सा होने पर भी उसे अलग माना गया है। हर बार उसकी इज्ज़त को लूटा गया है। उसे मात्र भोग्या ही माना गया है। ऐसी स्थिति में नारी सुरक्षित कहाँ है? वह वैसे अपने आप को पुरुषों के समाज का हिस्सा माने? पुरुषप्रधान समाज ने नारी का तो सदा अपमान ही किया है। नारी जीवन के इसी कटु यथार्थ का चित्रण करते कवि जयप्रकाश कर्दम कहत हैं 'स्त्री होने से पहले, जहां होती है एक जाति पहचाना जाता है उसे उसकी जाति से कैसे करे वह अनुभव एक होने का कैसे माने खुद को वास्तव समाज ।'

समाज में नारी के वास्तव रूप को कवि ने यहाँ रेखांकित किया है। बार बार नारी को उसके मात्र नारी होने का एहसास दिलाया जाता है। उसकी शक्ति को उसकी कमज़ोरी बताकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया जाता है। नारी इस दुर्दशा का यथार्थ निरूपण इस कवि ने अपनी कविताओं में अनेक स्थलों पर किया। तथ्य यह है कि नारी कभी उसके अधिकार भोगने का उसे अवसर ही नहीं दिया गया। सवर्णों ने तो उसे मात्र उपभोग की वस्तु समझा, वासना पूर्ति का साधन समझा और दलित वर्ग ने भी उसे इस से अधिक दयनीय बना दिया। दलित स्त्री सवर्णों की दृष्टि से भोग्या है तो दलितों में भी वह मात्र वासना पूर्ति का साधन है। पुरुष वर्ग ने यह भूला दिया कि नारी एक मौ है, बहन है, पत्नी है। ये सारे रिश्ते स्त्री के गौरव को बढ़ानेवाले हैं। पर पुरुषों ने नारी को उसका गौरव देने के बजाय सदा उसे कुचला है। जिसकी कोख से पैदा हुए उसी का अपमान किया। नारी जीवन इसी त्रासद स्थितियों का मार्मिक चित्रण कवि जयप्रकाश कर्दम ने इन कविताओं में किया है।

इस दयनीय स्थिति से नारी को उबारना है, तो इस उत्पीड़न से मुक्ति के लिए सुनियोजित संघर्ष करने की ज़रूरत है। धैर्य और निरंतर प्रयत्नों पर ही यह संभव है। इस विषम स्थिति को मिटाने की ज़रूरत है और यह तभी मिटेगी जब हृदय आग हो। इस स्थिति का चित्रण करते हुए कवि 'तिनका तिनका आग' नामक कविता में कहता है- 'विषमता के विशाल जंगल में तिनका तिनका सुलगती आग है जिंदगी जेहाद है जारी रहना है जिसे उदित होने तक क्रांति का सूर्य स्थापित होने तक समता का साम्राज्य।' इस तरह कवि जयप्रकाश कर्दम ने अपनी कविताओं में भारतीय दलित नारी स्थिति का यथार्थ चित्रण करते हुए संकेत किया है कि नारी को इस दयनीयता से इस दयनीय नारी की स्थिति से हम मुक्ति दिलानी ही है आरै यह तभी संभव है जब हम उसे समाज में सही अर्थों में उसकी आधी हिस्सदोरी कबुल करें।

संदर्भसूचिः-

१. डॉ. शीलबोधी, दलित साहित्य की वैचारिकी और जयप्रकाश कर्दम, अकादमी प्रतिभा, दिल्ली.

२. दळवी, डॉ. शिवाजी सुखदेव, जयप्रकाश कर्दम के साहित्य मे दलित जीवन का अनुशीलन, मनभावन प्रकाशन, दिल्ली

३. तिनका तिनका आग पृ. ९,१०

४. तिनका तिनका आग पृ. ६३-२०

५. रुपचंद गौतम (सं) (२००७) दलित अभिव्यक्ति, वाद प्रतिवाद, श्री. नटराजन प्रकाशन, दिल्ली.

६. डॉ. कर्दम, तिनका तिनका आग पृ. २१

७. डॉ. देवेश ठाकूर, मैला आँचल की रचना प्रक्रिया पृ. ६८

८. तिनका तिनका आग पृ. २०, २१

९. तिनका तिनका आग पृ. २०, २१

१०. तिनका तिनका आग पृ. ६१

११. डॉ. श्रीराम गुंदेकर, ग्रामीण साहित्यः प्रेरणा और प्रयोजन पृ. ५९

१२. कवि जयप्रकाश कर्दमः एक अध्ययन डॉ. बनसोडे, डॉ. कांबळे पृ. ५६